जन मीडिया

वर्ष-6, अंक-65

अगस्त 2017

हमारा समाज, हमारा शोध

₹20

झूठ का पत्रकार

ISSN 2277-2847

जन मीडिया

65

संपादक
अनिल चमड़िया

सहायक संपादक
अवनीश
पूर्णिमा उरांव
संजय कुमार बलौदिया

वेबसाइट प्रभारी
श्वेता सिंह

कला
गोपाल नायडू

पेज डिजाइन
प्रदीप बिष्ट

प्रसार
मुकुल रंजन (9953991306)
subscribe.journal@gmail.com

संपर्क
सी-2, पीपलवाला मोहल्ला, बादली एक्सटेंशन, दिल्ली-42
मो. : 9910638355, 9654325899
e-mail :
janmedia.editor@gmail.com
follow us :
facebook.com/JanMedia Journal/
Website
www.mediastudiesgroup.org.in

4. **अध्ययन**
आतंकवादी घटनाओं की अनसुलझी खबरें और पाठकों की विवशता
मीडिया स्टडीज ग्रुप

9. **विश्लेषण**
मीडिया की आजादी के मसले
दिलीप खान

14. **शोध-संदर्भ**
पत्रकारों की सुरक्षा पर रिपोर्ट

18. **अध्ययन**
झूठ का पत्रकार
अनिल चमड़िया

23. **मीडिया के किस्से**
फिर क्या हुआ
सुशील कुमार सिंह

25. **भाषण**
मीडिया में 75 प्रतिशत आबादी की खबरें नहीं
पी. साईनाथ

28. **विश्लेषण**
बशीर हाट हिंसा की पृष्ठभूमि

30. **दस्तावेज**
भारतजीवन

इस अंक की सामग्री से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। समस्त विवाद दिल्ली न्यायिक क्षेत्र में विचाराधीन होंगे। सभी पद अवैतनिक हैं।

आतंकवादी घटनाओं की अनसुलझी खबरें और पाठकों की विवशता

यह एक नई स्थिति है कि जन संचार माध्यमों के पाठक व दर्शक वर्ग को किसी घटना से संबंधित वस्तुस्थिति को जानने के लिए कोई एक अखबार व चैनल पर्याप्त नहीं रह गया है। कारोबारी समाचार पत्र व टेलीविजन चैनल अपने वैचारिक लगाव, सामाजिक झुकाव और आर्थिक स्रोत के हितों के मद्देनजर किसी घटना की परतों को खोलते हैं और उन परतों पर अपने हितों के अनुकूल एक नजरिया तैयार करने की कोशिश करते हैं। भारत में जन संचार माध्यमों के पाठक व दर्शकों के बीच एक आम दर्शक एवं पाठक होता है, जो एक समाचार पत्र व चैनल को अपने लिए एकमात्र स्रोत बनाए रखने को मजबूर होता है और उसके लिए वही सब कुछ तथ्य व सत्य होता है जितना उसका समाचार पत्र व चैनल अपने हितों के अनुरूप घटनाओं की परतों को खोलता है। वस्तुस्थिति को जानना एक अभिजात्य का काम हो गया है। पाठक व दर्शक वर्ग में उन्हें इलीट (अभिजात्य) कहा जाता है जो कई समाचार पत्रों और चैनलों से वस्तुस्थिति की कड़ियों को जोड़ने की मशक्कत करते हैं।

यह 10 जुलाई 2017 को जम्मू कश्मीर में हिन्दुओं की अमरनाथ यात्रा के दौरान हमले से जुड़ी खबरों के प्रकाशन के संदर्भ में गुजरात में द टाइम्स ऑफ इंडिया के पाठकों से बातचीत का सार है। यह अध्ययन इस प्रश्न को लेकर है कि किसी घटना के बाद एक समाचार पत्र में उससे संबंधित कई तरह की खबरों के प्रकाशन के बाद भी पाठकों के लिए सूचनाएं किस रूप में अधूरी या अपर्याप्त रह जाती हैं? समाचार पत्र एक खास तरह की घटना के संदर्भ में क्या एक निश्चित वजह को एक निश्चित राय के रूप में स्थापित कर सकता है? समाचार पत्र एक निश्चित वजह को एक निश्चित राय के रूप में स्थापित कर अपनी खबरों को किस दिशा की तरफ मोड़ने में सुविधा महसूस करता है?

धार्मिक समूह से जुड़ी घटना की खबरें इन सतहों पर खड़ी होती हैं। पाठकों से बातचीत के आधार पर निम्न सार सामने आता है।

जम्मू कश्मीर में होने के कारण अमरनाथ यात्रा को पिछले कुछेक वर्षों में काफी प्रचार मिला है। अमरनाथ यात्रा को केवल एक धार्मिक समूह के कर्मकांड के रूप में नहीं ही देखा जाता है, इस यात्रा का साम्प्रदायिक राजनीतिक महत्व भी है। अमरनाथ यात्रा से निष्क्रिय धार्मिक समूह को भी जोड़ दिया जाता है जो कि इस यात्रा में शामिल नहीं होते हैं या जिनकी इसमें शामिल होने में कतई दिलचस्पी नहीं है। यह जोड़ना या जुड़ने की बाध्यता स्थापित करना ही किसी धार्मिक कर्मकांड या धार्मिक उत्सव एवं मौके का साम्प्रदायिक राजनीतिकरण का सूचक है। इसीलिए अमरनाथ यात्रा से जुड़ी किसी भी घटना को राष्ट्रीय घटना के रूप में प्रस्तुत करने की होड़ होती है।

हिन्दू धार्मिक समूह के खिलाफ हमले की घटना को आतंकवादी घटना के रूप में देखा जाता है। इस पर किसी बहस की कोई गुंजाइश हो सकती है, ये सोच के दायरे से बाहर होता है। गुजरात में कारोबारी मीडिया के आम ग्राहकों के बीच आतंकवाद और पाकिस्तान एक दूसरे के पर्याय के रूप में ही लिए जाते हैं। घटना आतंकवादी है और उसमें पाकिस्तान की भूमिका है इसे लेकर किसी तरह की बातचीत की कोई गुंजाइश भी नहीं रह जाती है क्योंकि इस स्थापना के बाद नारे लगने लगते हैं। पाकिस्तान पर हमला कर देना चाहिए। पाकिस्तान का झंडा जला देते हैं। धार्मिक यात्रा पर जाने वालों को शहीद कहा जाने लगता है। सरकारें विमान से लाशों को लाने का इंतजाम करती हैं। किसी की सामान्य तौर पर ऐसी दुर्घटना में मौत के बाद सरकारी खाते से एक लाख रुपये मुआवजे के तौर पर देने का प्रावधान है, लेकिन ऐसी घटनाओं को राष्ट्र के विरुद्ध घटनाओं के रूप में रखकर उन्हें शहीद बताया गया और फिर मृतकों के परिजनों को दस लाख रुपये बतौर मुआवजा देने का ऐलान किया गया। घटना से संबंधित खबरें इतनी विरोधाभासों से भरी होती हैं, लेकिन उन विरोधाभासों के आधार पर घटनाओं के तह में जाने की प्रेरणा नहीं मिलती क्योंकि घटनाओं की वजह के रूप में पाकिस्तान की भूमिका को लेकर एक निश्चित नजरिया पाठकों के बीच बन चुका है। अमरनाथ यात्रा से जुड़ी खबरें उसी तरह से पेश की गईं जिस तरह से 2004 में अक्षरधाम पर हमले की खबरें पेश की गई थी और जिसके बारे में आज तक आधिकारिक तौर पर पता नहीं चला कि सच क्या है?

भारत में हुई घटना को पाकिस्तान से जोड़ने का अर्थ उसे इस्लाम और उसको मानने वालों से जोड़ने से सुविधा ये होती है कि घटना के दो साम्प्रदायिक पक्ष स्वतः तैयार कर लिए जाते हैं। गुजरात में

मीडिया की आजादी के मसले

दिलीप खान*

पत्रकारों पर हमले और धमकियों की वारदातों को देखते हुए मीडिया की आजादी पर बहस जमाने से चल रही है। 1991 में यूनेस्को के 26वें महासम्मेलन की संस्तुतियों के बाद संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक नई पहल की। संयुक्त राष्ट्र ने ये तय किया कि बेबाक पत्रकारिता के लिए हमले झेलने वाले और जान गंवाने वाले लोगों तथा पत्रकारिता की आजादी पर बढ़ रहे अंकुश को रोकने के लिए 3 मई को विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस के तौर पर मनाया जाएगा। ढाई दशक पहले यानी 1993 में पहली बार इस दिवस का आयोजन हुआ। मीडिया की बहुलता और आजादी पर अफ्रीका के पत्रकारों द्वारा यूनेस्को के सेमिनार में विंडहॉक घोषणापत्र जारी किया गया था, इसी के आधार पर संयुक्त राष्ट्र ने इस दिवस की शुरुआत की। 1991 के सेमिनार में अफ्रीकी पत्रकारों ने 1980 के दशक में वहां के प्रिंट मीडिया पर सेंसरशिप, हमले, धमकियों की वारदातों को गिनाते हुए अफ्रीका में लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देकर पत्रकारिता को ज्यादा बहुल, ज्यादा जनहितकारी और ज्यादा निष्पक्ष बनाने की अपील की थी। इस घोषणापत्र में सबसे ज्यादा जोर इस बात पर था कि पत्रकारिता तब तक लोकतांत्रिक नहीं हो सकती, जब तक व्यवस्था लोकतांत्रिक न हो।[1] यानी राष्ट्र-राज्य का चरित्र उस परिधि में हो रही पत्रकारिता के चरित्र को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाता है।

तब से लेकर अब तक 25 बार संयुक्त राष्ट्र ये दिवस मना चुका है, लेकिन जो चिंताएं उस वक्त गिनाई गईं थीं, वो आज भी जस की तस बनी हुई हैं। कहीं-कहीं इसका स्वरूप बदला जरूर है, लेकिन सेंसरशिप से लेकर धमकियों और राष्ट्र-राज्य की वर्चस्वशाली विचारधारा के साथ पत्रकारिता के नत्थी होने की कहानियां आज भी दुनिया के हर कोने में देखने को मिल जाएंगी। यही वजह है कि इस बार यूनेस्को ने विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस का थीम रखा- क्रिटिकल माइंड इन क्रिटिकल टाइम यानी नाजुक दौर में आलोचनात्मक सोच। यूनेस्को और संयुक्त राष्ट्र इस दौर को नाजुक मान रहा है और लक्ष्य बना रहा है कि आने वाले दिनों में मीडिया को ज्यादा बराबरी भरा मंच बनाया जा सके। संयुक्त राष्ट्र ने 2030 तक के लिए तीन लक्ष्य बनाए हैं-

1. खतरे के हालात में रह रहे पत्रकारों की सुरक्षा
2. मीडिया के ऊपर होने वाली हिंसा पर रोक
3. मीडियाकर्मियों पर हमला करने वाले लोगों को सजा

क्या ये कोई नई पहल है? क्या इससे पहले संयुक्त राष्ट्र ने ऐसे कदम नहीं उठाए? क्या इससे पत्रकारों पर हमले रुक गए? दुनिया के देशों में हमलावरों को सजा मिल गई? संयुक्त राष्ट्र के खुद के आंकड़े बताते हैं कि बीते एक दशक में 827 पत्रकारों की दुनिया भर में हत्या हुई, लेकिन हर 10 में से सिर्फ एक मामले में हमलावरों को पकड़ा जा सका। 2012 से यूनेस्को पत्रकारों की सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र की कार्ययोजना पर काम कर रहा है, लेकिन इसका कोई ठोस नतीजा नहीं निकल पाया।[2] पत्रकारों और पत्रकारिता पर हमले को लेकर संयुक्त राष्ट्र ने इससे पहले भी पहल की। 12 नवंबर 1997 को यूनेस्को महासम्मेलन के 29वें सत्र में एक प्रस्ताव को मंजूरी मिली जो कि 'पत्रकारों के ऊपर होने

पत्रकारों की सुरक्षा पर रिपोर्ट

भारतीय प्रेस परिषद (पीसीआई) ने 19 सितंबर, 2011 को अपनी बैठक में देश में पत्रकारों की हो रही हत्या के मामलों की जांच पड़ताल के लिए एक उपसमिति गठित करने का फैसला किया। परिषद् के आदेश के अनुसार 17 अक्टूबर 2011 को पीसीआई के अध्यक्ष मार्कंडे काटजू ने उप-समिति नियुक्त की। इस उप-समिति ने देश के 11 राज्यों का दौरा किया। हम यहां परिषद की उप समिति की रिपोर्ट में से सिर्फ उन चार राज्यों जम्मू कश्मीर, छत्तीसगढ़, असम और मणिपुर को शामिल कर रहे हैं, जहां पत्रकारों को ज्यादा चुनौतियों और संघर्ष का सामना करना पड़ता है।

जम्मू-कश्मीर

समिति के सदस्यों की पत्रकारों के साथ यह बैठक 18 जून, 2012 को हुई जिसमें प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और संपादकों को मिलाकर लगभग 60 पत्रकार शामिल हुए। पत्रकारों ने बताया कि पिछले 20 सालों में अपना काम करते हुए 25 पत्रकार मारे गए। उन्होंने बताया कि कश्मीर में पत्रकार हथियारबंद उग्रवादी तत्वों, सुरक्षा बलों और पुलिस के निशाने पर होते हैं। उन्होंने बताया कि कश्मीर में किस तरह पत्रकारों को रोज-ब-रोज के काम में चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। हत्याओं के अलावा, कई पत्रकार उग्रवादी हमलों और अर्धसैनिक बलों के हमलों में बुरी तरह घायल हुए।

एक वरिष्ठ पत्रकार ने बताया कि 2008 के बाद से, जब भी उग्रवादियों ने सुरक्षा प्रतिष्ठानों को निशाना बनाया, घटनाओं को कवर करने वाले पत्रकारों को सुरक्षाकर्मियों का निशाना बनना पड़ा। एक दिन तो सुरक्षाकर्मियों ने 25 पत्रकारों को पीट तक दिया, जबकि उनके पास मान्यता प्राप्त पत्रकार होने के पहचान पत्र और कर्फ्यू पास भी थे। फोटो पत्रकारों के प्रतिनिधियों ने बताया कि वे सुरक्षा कर्मियों के निशाने पर रहते हैं और उनके कैमरे तथा अन्य जरूरी उपकरण छीन लिए जाते हैं, जिन्हें कभी वापस नहीं किया जाता है।

कई वरिष्ठ पत्रकारों की मांग थी कि सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून को खत्म कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह सुरक्षा बलों को विशेषाधिकार दे रहा है और इसकी आड़ लेकर वे मीडिया को निशाना बनाते रहते हैं, लेकिन उनके खिलाफ कोई भी कार्रवाई नहीं हो पाती। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि पत्रकारों खासकर वीडियो और फोटो पत्रकारों को विशेष जैकेट दिए जाने चाहिए ताकि सुरक्षा बल के जवान आसानी से पत्रकारों को पहचान सकें और उन्हें यह बहाना बनाने का मौका न मिल सके कि वे शरारती तत्वों से निपटने के दौरान पत्रकारों की पहचान नहीं कर सके।

समिति के सदस्यों ने केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (सीआरपीएफ) के विशेष महानिदेशक से भी बातचीत की। उन्होंने बताया कि सीआरपीएफ पत्रकारों का बहुत सम्मान करता है क्योंकि वे संविधान में निहित प्रेस की आजादी को बनाए रखने में भूमिका निभाते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि उनका पत्रकारों के काम में बाधा डालने का कोई इरादा नहीं होता है।

हालांकि सीआरपीएफ के विशेष महानिदेशक ने जोर दिया कि ‘पत्रकारों के खिलाफ कुछ घटनाएं होती हैं, क्योंकि वे सेना के काम में दखल देते हैं जबकि सुरक्षाकर्मी देश की सेवा कर रहे होते हैं।’ उन्होंने समिति को विश्वास दिलाया कि

झूठ का पत्रकार

अनिल चमड़िया

केंद्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह का कहना था कि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में चल रहे आंदोलन को पाकिस्तान के संगठन लश्कर-ए-तैय्यबा के संस्थापक हाफिज सईद की मदद मिल रही है।[1] 9 फरवरी 2016 को भारत विरोधी नारे लगाने के आरोप के बाद जेएनयू में गिरफ्तारियों का सिलसिला शुरू हुआ और जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार की पुलिस द्वारा देशद्रोह के आरोप में गिरफ्तारी को सही ठहराने के इरादे से देश के गृहमंत्री ने एक ट्वीट के आधार पर यह बयान दिया था। जबकि जांच के बाद जेएनयू में नारे लगाने का आरोप और ट्वीट दोनों फर्जी साबित हुए।

भारत में पत्रकारिता में खबरों के प्रति विश्वसनीयता को बनाए रखने की चुनौती मुख्य है। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में 9 फरवरी 2016 की घटना को एक देशद्रोह की सामग्री के रूप में तैयार करने और संवैधानिक संस्थानों द्वारा उसकी पुष्टि करने तथा उस सामग्री को मीडिया संस्थानों द्वारा प्रचारित करने का उदाहरण महज एक उदाहरण नहीं है। यह भारतीय पत्रकारिता के सामने एक समानांतर ढांचे को विकसित करने के प्रयासों के बीच वैसी घटना है जिसका कई वजहों से पर्दाफाश संभव हो सका, लेकिन ऐसे उदाहरणों का सिलसिला भारतीय पत्रकारिता में लगातार जारी है। इस पर्चे में हम एक ऐसे ही उदाहरण को प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे कि भारतीय पत्रकारिता के ढांचे के भीतर होने वाले परिवर्तनों का मूल्यांकन किया जा सके। क्या ये परिवर्तन वास्तव में पत्रकारिता की एक समानांतर व्यवस्था को विकसित होने का अवसर दे रहे हैं, इसकी पड़ताल की जानी चाहिए।

द टाइम्स ऑफ इंडिया जो कि स्वयं को भारतीय पत्रकारिता के बतौर लीडर होने का दावा करता है, उसने 3 मई 2017 को एक सामग्री को बतौर खबर प्रस्तुत किया। इस खबर में उसने बताया कि भारत में स्कूलों के लिए पाठ्य पुस्तकें तैयार करने वाली संस्था एनसीईआरटी ने 2007 में प्रकाशित समाज विज्ञान की पुस्तक में नक्सलवादी नेता किशनजी पर आधारित एक अध्याय को शामिल किया है। पुस्तक का यह अध्याय कक्षा दस के छात्र-छात्राओं को राजनीतिक पार्टियों के बारे में सामग्री उपलब्ध कराने के उद्देश्य से तैयार करवाया गया। इसी अध्याय के एक हिस्से में किशन जी को राजनीति में एक नैतिक शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है। यह खबर उसके दो संवाददाताओं अभिषेक चौधरी और सौमित्रा बोस ने नागपुर की डेटलाइन से दी। इन संवाददाताओं ने इस खबर में यह उल्लेख किया कि नागरिकों के एक समूह ने उन्हें बताया कि एनसीईआरटी की वेबसाइट पर यह सामग्री उपलब्ध है जिसे बिना किसी शुल्क के डाउनलोड किया जा सकता है।[2]

दोनों संवाददाताओं ने अपनी खबर के स्रोत के रूप में नागरिकों के एक समूह का हवाला दिया है और उन्हें नागरिकों के समूह ने किताब प्रकाशित होने के दस वर्षों के बाद यह खबर दी। संवाददाताओं ने उस समूह के बारे में इसके अतिरिक्त खबर में कोई जानकारी नहीं दी है। उन्होंने इस समूह को अपने विश्वसनीय स्रोत के रूप में स्वीकार कर लिया और उसकी किसी भी स्तर पर कोई जांच पड़ताल नहीं की गई। संवाददाताओं के जेहन में इस तरह के प्रश्न भी नहीं उभरे कि किताब के दस वर्षों के बाद पहली बार भारत सरकार के संस्थान एनसीईआरटी की पुस्तक के इस अध्याय के बारे में नागरिकों का उक्त समूह उन्हें जानकारी क्यों दे रहा है। समाचार मीडिया में संवाददाताओं द्वारा दी जाने वाली सामग्री की जांच पड़ताल करने की एक पद्धति रही है। संवाददाताओं की सामग्री समाचार कक्ष के ढांचे में कई स्तरों से गुजर कर प्रकाशित होने की प्रक्रिया को पूरी करती है। इस सामग्री का संबंध वैसे व्यक्ति व राजनीति से हैं जो तत्कालीन भारतीय राजनीतिक इतिहास में बतौर संदर्भ बार-बार आता है।

एनसीईआरटी का उक्त अध्याय समाजवादी आंदोलन के नेता किशन पटनायक पर आधारित है जो कि 1962 में महज 27 साल की उम्र में ओडिशा के संबलपुर संसदीय सीट से लोकसभा पहुंचने वाले सबसे युवा सांसद थे। 30 जून, 1930 को जन्मे किशन पटनायक प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के टिकट पर 1962 में तीसरी लोकसभा के लिए चुने गए थे। किशन जी को भारतीय राजनीति में एक नैतिक ताकत के रूप में चित्रित किया जाता है क्योंकि वे संसदीय राजनीति में

मीडिया में 75 प्रतिशत आबादी की खबरें नहीं

(दिल्ली के गांधी स्मृति एवं दर्शन में 16 जुलाई 2017 को 'किसानी के संकट और मीडिया' पर दिया गया भाषण)

पी. साईनाथ*

मैंने अपने कैरियर की शुरुआत 1980 में की थी तब हर अखबार में एक लेबर संवाददाता होता था। हर अखबार में एक कृषि संवाददाता होता था। लेकिन पिछले बीस सालों में कृषि संवाददाता, कृषि क्षेत्र को कवर नहीं करता है बल्कि वो कृषि मंत्री को कवर करता है। कभी फील्ड (कार्यक्षेत्र) में नहीं जाता, खेत में नहीं जाता, मंडी में नहीं जाता। मंत्रालय से प्रेस विज्ञप्ति या बड़े-बड़े कॉरपोरेट जगत वालों से उनकी प्रेस विज्ञप्ति लेकर के मीडिया में ये कृषि की कवरेज हो जाती है। आज लेबर संवाददाता का पद तो है ही नहीं। किसी भी समाचार पत्र व चैनल में मजदूरों से संबंधित खबरों को लाने वाला पूर्णकालिक संवाददाता नहीं है जबकि बिजनेस कवरेज के लिए हर अखबार व चैनल में 8-10-12 संवाददाता होते हैं। मुंबई में हर एक अखबार में बिजनेस कवर करने के लिए 12 संवाददाता होंगे। उनमें एक संवाददाता मार्चेंट बैंकिंग ही कवर करेगा तो दूसरा इनवेस्टमेंट बैंकिंग कवर करता है। लेकिन जब मीडिया में ये कहा जाए कि पूर्णकालिक लेबर संवाददाता नहीं है, कृषि संवाददाता नहीं है तो इसका मतलब कि मीडिया के लिए कृषि और मजदूरी से संबंधित देश की 75 प्रतिशत आबादी, खबर नहीं है। यदि मीडिया कहता है कि उसकी श्रम और कृषि को कवर करने में दिलचस्पी नहीं है तो इसका मतलब है कि उसकी 75 प्रतिशत आबादी में दिलचस्पी नहीं है। लेकिन जब कभी उस क्षेत्र में 2-3 हजार लोग मर जाएंगे तो वर्ष में एक बार कुछ रिपोर्ट लगा दिया जाएगा। लेकिन जब श्रम और कृषि के लिए संवाददाता नहीं होंगे तो इसका मतलब है कि इस क्षेत्र की गहरी जानकारी रखने वाले, विशेषज्ञता हासिल करने वाले और इन क्षेत्रों के बारे में ज्ञान अर्जित करने वालों को मीडिया से अलग कर दिया गया है।

मैं अक्सर ये देखता हूं कि संवाददाता आकर हमसे पूछते हैं कि हमको एक एसाइनमेंट दिया गया है कि अभी सोलापुर जाना है और वहां चप्पल इंडस्ट्री में कुछ हुआ है। आप कुछ बता दीजिए। तो मैं ये देखकर हैरान रह जाता हूं कि पांच मिनट में फोन पर बात करके बड़े अखबारों के लिए रिपोर्ट तैयार हो जाती है। इन क्षेत्रों की 75 प्रतिशत आबादी प्रभावित हो रही है और बड़े अखबार और चैनल्स में ये आलम है कि 5 सालों में औसतन पहले पेज पर 0.67 प्रतिशत और चैनलों के प्राइम टाइम में 0.82 प्रतिशत ही ग्रामीण स्तर की सामग्री आ पाती है। ग्रामीण इलाकों में 70 प्रतिशत जनसंख्या है लेकिन आपके अखबार के पहले पेज पर ग्रामीण भारत की 0.67 प्रतिशत न्यूज आती है। हम आंकडों को भी कवर नहीं करते हैं और आंकड़ों का विश्लेषण करने की क्षमता से भी चूक गए हैं। मैं कोई पत्रकारों को दोष नहीं दे रहा हूं। अगर अखबार की ही दिलचस्पी नहीं है, प्रबंधन का इंटररेस्ट नहीं है, अगर संपादक का इससे कोई सरोकार नहीं है कि ये बड़ा मुद्दा है और इसको सही से कवर करना है तो मीडिया में इस क्षेत्र को लेकर विशेषज्ञता कैसे बनेगी, नहीं बनेगी। जब आप स्पोर्ट्स कवरेज करेंगे तो मैच के लिए संवाददाता भेजना पड़ता है लेकिन अगर आप अकाल कवर कर रहे हैं, सुखाड़ कवर कर रहे है और वहां आप वैसे किसी संवाददाता को भेजने के लिए मजबूर है जो किसानी के बारे में कुछ नहीं जानता या जानती है तो वह क्या करेंगे। वे कलक्टर से बात करेंगे और किसी एक किसान से बात करने की औपचारिकता पूरी करेंगे और एक ऐसा

बशीर हाट हिंसा की पृष्ठभूमि

प्रस्तुति : वरुण शैलेश

भारत में साम्प्रदायिक हमलों में मीडिया की भूमिका पर आधारित कई अध्ययन सामने आए हैं। तकनीक के विकास के साथ जन संचार माध्यमों का नए-नए रूपों में विस्तार हुआ है। समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन और इंटरनेट तक होने वाले इस विस्तार में यह स्पष्ट हुआ है कि हर तकनीक पर आधारित जनसंचार माध्यमों का इस्तेमाल साम्प्रदायिक उन्माद और हमलों के लिए किया गया है। ये विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट भी हुआ है, लेकिन विभिन्न तकनीक के आधार पर विस्तारित जन संचार माध्यमों का साम्प्रदायिक उन्माद और हमलों के लिए इस्तेमाल इंटरनेट आधारित जन संचार माध्यमों से पूर्व भिन्न चरित्र का रहा है। इंटरनेट के विस्तार ने साम्प्रदायिक उन्माद और हमलों की गति को तेज किया है। समाचार पत्रों की साम्प्रदायिक भूमिका में ये देखा गया है कि किसी साम्प्रदायिक तनाव ग्रस्त इलाके में समाचार पत्रों की पहुंच होने के बाद साम्प्रदायिक हमलों व उन्माद का दौर और तेज हुआ है। स्वतंत्रता के पहले से और स्वतंत्रता के सत्तर वर्षों बाद तक समाचार पत्रों की साम्प्रदायिक भूमिका का अध्ययन एक विषय बना हुआ है। 1984 में आकाशवाणी से ये प्रसारित होने के बाद कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की उनके सिख सुरक्षाकर्मियों द्वारा हमला और हत्या कर दी गई, उसके बाद सिख विरोधी देशव्यापी हमले शुरू हो गए। भारत में सरकारी नियंत्रण वाले संस्थानों की साम्प्रदायिक भूमिका का यह सीधा उदाहरण था। टेलीविजन चैनलों की साम्प्रदायिक हिंसा को बढ़ाने में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष भूमिका भी सामने आई है।[1]

समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन चैनलों की साम्प्रदायिकता में भूमिका के लिए उसको चलाने वाली संस्था व कंपनी को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, लेकिन इंटरनेट पर आधारित कई ऐसे मंच तैयार किए गए हैं जिनमें हर व्यक्ति के पास जनसंचार माध्यम है। हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार किसी भी तरह की सामग्री को संप्रेषित कर सकता है। इसीलिए इस तकनीक के जरिये सामग्री के संप्रेषण की वजह से देश के विभिन्न हिस्सों में साम्प्रदायिक उन्माद और हमलों की घटनाओं में काफी बढ़ोतरी हुई है। इस दौर से पहले धार्मिक उत्सवों व अन्य मौकों पर साम्प्रदायिक तनाव और हमलों के प्रति सतर्कता की जरूरत महसूस की जाती थी। आजादी के बाद रामनवमी और मुहर्रम या किसी ऐसे ही जलसों के दौरान कई साम्प्रदायिक दंगों व हमलों की घटनाएं सामने आई हैं। मंदिरों और मस्जिदों में मांस के टुकड़े फेंकने की घटनाओं के कारण दो धार्मिक समुदायों के बीच भी कई घटनाएं हुई हैं, लेकिन शब्द और चित्रों को साम्प्रदायिक हमलों के लिए पर्याप्त माना जा रहा है। इंटरनेट आधारित किसी सोशल साइट पर सामग्री के जरिये साम्प्रदायिक हमले की घटनाओं ने भारतीय समाज में हर क्षण के लिए भय व असुरक्षा का वातावरण तैयार किया है। दंगा वस्तुतः पुराना शब्द हो गया है। दंगे ने हमले का रूप ले लिया है। जहां हमलावर खुद को मजबूत स्थिति में देखते हैं वे सोशल साइट पर किसी सामग्री के बहाने हमले के लिए जमा हो सकते हैं। उत्तर प्रदेश के मुज्जफरनगर में हमले की घटनाएं सोशल साइट पर सामग्री प्रसारित करने के साथ ही शुरू हुई थीं। पश्चिम बंगाल के बशीर हाट की घटना इस संदर्भ में नई कड़ी है।

बशीर हाट के घटनाक्रम के चार चरण थे। पहले चरण में फेसबुक पर आपत्तिजनक टिप्पणी की गई। इसके बाद, मुसलमानों के एक ग्रुप ने हिंसा की। राज्य